International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(5): 113-116

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(5): 113-116
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 11-07-2018
Accepted: 13-08-2018

सोनिया
शोधच्छात्रा, पीएच०डी,
संस्कृत–विभाग, हिमाचल प्रदेश,
भारत।

कौशल्या चौहान
प्रोफ़ेसर, शोध–निर्देशक,
संस्कृत–विभाग, हि०प्र०
विश्वविद्यालय, समरहिल (शिमला),
हिमाचल प्रदेश, भारत।

Correspondence
सोनिया
शोधच्छात्रा पीएच०डी,
संस्कृत–विभाग, हिमाचल प्रदेश,
भारत।

सद्धर्मपुण्डरीक में वर्णित स्कन्ध–त्रय

सोनिया, कौशल्या चौहान

प्रस्तावना

बौद्धधर्म विश्व के महनीय धर्मों में अन्यतम हैं। भगवान् बुद्ध ने समय की परिस्थिति के अनुरुप जिस धर्मचक्र का प्रवर्तक किया वह धर्म उतना सजीव व्यवहारिक तथा मंगलमय कि आज इतने वर्षों के अनन्तर भी उसका प्रभाव मानव समाज पर भी न्यून नहीं हुआ है। बौद्ध दर्शन एवं धर्म के आदि प्रव्रतक गौतम बुद्ध थे।[1] बोधि (ज्ञान) रुप बुद्ध में जगत् कल्याण की भावना सर्वोपरि थी वह लोक–क्लेश को नहीं देख सकते थे और इसके लिए महात्मा बुद्ध ने करुणार्थ राजकीय सुख–सुविधाओं का परित्याग कर अरण्य (जंगल) की राह ली और तप से संतप्त हुये। बोधगया में बोधिवृक्ष के नीचे महात्मा बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ। वह पूर्णप्रबुद्ध हो गये उनका अन्तःकरण सर्वविध कालुष्य से रहित हो गया। परन्तु महात्मा बुद्ध का इतना ही लक्ष्य नहीं था वह तो पर–दुःख के निराकरण हेतु ही बुद्ध बने थे उसका उपदेश तथा उस उपदेश के द्वारा जगत कल्याण करना चाहते थे। उनका यह धर्म जागतिक–आर्ति से त्राण दिलाने वाला करुणा सेतु है, जो निर्वाण तक पहुंचाने के सर्वथा समर्थ है।[2] गौतम बुद्ध ने बोधगया में बोधिवृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त कर, जिन सिद्धान्तों एवं आदर्शों का प्रतिपादन किया वे ही बौद्धधर्म के नाम से प्रसिद्ध हुये अथवा उनके सिद्धान्तों एवं आदर्शों के समूह का नाम 'बौद्धदर्शन' पड़ा।[3] जन्म, जीवन और मरण प्रायः सभी दुःख से अभिभूत है बौद्धदर्शन इसी दुःख से मानव मात्र को मुक्ति दिलाने के लिए विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है।

बौद्ध धर्म में शील, समाधि ओर प्रज्ञा को त्रिरत्न कहा गया है। बौद्धधर्म में अष्टाङ्गि मार्ग इसी स्कन्धत्रय का पल्लवित रूप है। बुद्ध के उपदेशों का यही सार है। यह मार्ग बौद्धधर्म की आचार–मीमांसा का सर्वश्रेष्ठ साधन है। इस मार्ग पर चलने से मनुष्यों के दुःखों का हठात नाश हो जाता है तथा निर्वाण की प्राप्ति होती है।[4] स्कन्धत्रय का उल्लेख करते हुये भगवान् भिक्षुओं से कहते हैं कि रत्नत्रय का ज्ञान न होने से मेरा ओर तुम्हारा दीर्घकाल से संसार में आवामन होता रहा है लेकिन अब आर्यशील, आर्यसमाधि, आर्यप्रज्ञा का ज्ञान होने पर भवतृष्णा नष्ट हो गयी है जिस प्रकार पुनर्जन्म नहीं होगा। यशस्वी गौतम ने शील, समाधि तथा प्रज्ञा को सर्वश्रेष्ठ प्रतिवेद्य कहा है।[5] शील में प्रतिष्ठित हुआ साधक चित्त समाधि और प्रज्ञा की भावना करते हुए इस संसार की जटा से विजित हो सकता है।[6] सौन्दरनन्द महाकाव्य में बुद्ध ने नन्द को इसका उपदेश दिया है कि ''शील, समाधि और प्रज्ञा रूपी तीन रत्न इस अष्टाङ्गिक आर्य मार्ग पर आरुढ़ होकर मनुष्य दुःखों के हेतु रुप दोषों को छोड़ता है और अत्यन्त मंगलमय निर्वाण को करता है।''[7] सद्धर्मपुण्डरीक सूत्र में शील, समाधि और प्रज्ञा का विवेचन किया हैं जिसका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है–

शील

बौद्ध–धर्म में त्रिरत्न का मूल आधार शील है। यह सदाचार और कुशल कर्म है। शील से मन, वाणी और काय ठीक होते है।[8] जिस प्रकार विविध बीजों के अकुंरन, संवर्धन आदि के लिए पृथ्वी आधार है उसी प्रकार सभी कुशल धर्मों के आधार का नाम शील है।[9] मिलिन्दपञ्ह में आचार्य नागसेन ने शील को सभी कुशल धर्मों की प्रतिष्ठा बतलाया है।[10] इतना ही नागसेन ने इसे प्राणी मात्र का आधार सभी कुशल धर्मों का मूल तथा सभी बुद्धों के शासन का मुख कहा है।[11] शील निर्वाण का उत्तम मार्ग है। [12] शीलवान् प्रज्ञायुक्त होकर एकाग्रचित्त और संयम द्वारा कठिनाई से पार होने वाली भवरुपी दुस्तर बाढ़ को सहज ही तैरकर पार कर सकता है।[13] भगवान् बुद्ध स्वयं कहते है कि जो प्रज्ञावान्, वीर्यवान्, पण्डित शील में प्रतिष्ठित होता हे वही समाधि और प्रज्ञा की भावना करता हुआ तृष्णा रुपी जटा का निशेषतः नाश करता है तथा धर्मवृद्धि एवं महानता को प्रापत करता है।[14] शील ही जीवन की सही सम्पति है। शील की अभिव्यक्ति विभिन्न प्रकार के परिपालनीय नियमों के रूप में होती है। जिस

साधक का चित राग–द्वेष से विहीन हो चुका है जिसका अविद्या अन्धकार दूर हो चुका है, ऐसा निर्मल चित्त ज्ञानी भिक्षु ही इस सांसारिक जाल को काटने में समर्थ हो सकता है।[15] जिन प्राणियों का चित्त राग के द्वारा हर लिया गया है, ऐसे प्राणियों के लिए भगवान् ने शील का उपदेश दिया है।[16]

भगवान् बुद्ध ने सर्वसाधारण के लिए पंचशील और भिक्षुओं के लिए दस शील बतलाये हैं।[17]

पंचशील
1. प्राणी वध से विरति
2. चोरी से विरति
3. व्यभिचार से विरत
4. असत्य भाषण से विरति
5. सुरामेरयमद्य से विरति

दसशील
1. प्राणी वध से विरति
2. चोरी से विरति
3. अब्रह्मचर्य से विरति
4. असत्य भाषण से विरति
5. विकाल भोजन से विरति
6. सुरा मेरय महाप्रमाद स्थान से विरति
7. नित्यगीतवादित्रविसूक दर्शन से विरति
8. माला गन्ध विलेपन, मंडन आदि से विरति
9. उच्च शयन–महाशयन से विरति
10. स्वर्ण–रज प्रति ग्रहण से विरति

सद्धर्मपुण्डरीक सूत्र में आयुष्मान् महाकाश्यप कहते हैं कि हम लोगों ने संसार के नायक के शासन में रहकर जिस परम् विशुद्ध ब्रह्मचर्य का सेवन किया है, आज उसी का वशिष्ट, शान्त उदार एवं निर्दोष फल हमें प्राप्त हुआ है। [18] इस सूत्र में बुद्ध के कुछ व्यक्ति मणि तथा रत्नों के समान (मूल्यवान्) अपने विशुद्ध शील को सदा अक्षुण्ण बनाये रखते हैं और वे अपने जीवन में उसका पूर्ण रूप से आचरण करते हैं तथा अपने शील के द्वारा ही अग्रबोधि की प्राप्ति करते हैं। [19] शील ही वह आभूषण है जिससे व्यक्ति का व्यक्तित्व चमकता है न कि बहुमूल्य आभूषणों और वस्त्रों से। [20] बुद्ध के कुछ क्षमा शील पुत्र अंहकारी भिक्षुओं की भर्त्सना, आक्रोश एवं तर्जनों को धैर्यपूर्वक सहन करते हैं तथा उन्होंने सहिष्णुता के द्वारा अग्रबोधि की प्राप्ति की है। [21] सत्त्वों में बिना शील के धर्म वैसा ही नहीं टिकता जैसे छिद्र युक्त पात्र में जल। [22] बुद्धविजयकाव्य में भगवान् बुद्ध ने जाति की प्रभुता से अभिमानी, विनम्रता रहित चित्त वाले प्राणियों को विप्रता प्राप्त कराने के लिए शील सम्पत्ति की देशना की है। [23] आयुष्मान् महाकाश्यप सद्धर्मपुण्डरीक में कहते है कि हम लोगों ने संसार के जानने वाले भगवान् के शासन में रहकर शील की रक्षा की है, हे नाथ! उसी पूर्व आचरित शील का हम लोग फल पा रहे है। [24]

इस प्रकार भगवान बुद्ध ने शील को या सदाचार को चारित्रिक शुद्धि के लिए, नैतिक मूल्यों की शिक्षा के लिए परम् आवश्यक माना है। जो व्यक्ति शील का आचरण करता है वह पवित्र माना जाता है। शीलाचार व्यक्ति को सुसभ्य, सुशिक्षित बनने का मौलिक अधिकार है। शील अर्थात् आचार व्यक्ति को श्रेष्ठ विचार एवं आचरण वाला बनाता है, जिससे सुख समृद्धि और शान्ति की स्थापना हो सकती है।

समाधि

कुशलचित्त की एकाग्रता 'समाधि' है। जब कुशल चित्त एकाग्र होता है तो इसी अवस्था को समाधि कहा जाता है। [25] अभेद रूप से बिना किसी अन्तर के ध्यान समाधि स्वभाव से कुशलचित्त की एकाग्रता है। [26] समाधि बुद्धत्व की प्राप्ति के लिए शील से भी उत्कृष्ट साधन है। [27] समाधि चार आर्य सत्य का ध्यान करना है। यह चित्त की समता की प्राप्ति और दूसरों के सुने हुए सत्य को स्पष्ट रूप से समझने में सहायक है। [28] समाधि नामक इन्द्रिय धर्मालोकमुख है, इसके कारण चित्त की विमुक्ति होती है अर्थात् चित्त राग–द्वेष, मोह के बन्धन से छूट जाता है। [29] मिलिन्दपञ्ह में भी कहा गया है कि जितने भी कुशल धम हैं, सभी समाधि के प्रमुख होने से होते हैं। इसी की ओर झुकते हैं, इस में आकर व्यस्थित होते हैं। [30] जिसने भी अपने मुकुट में यह समाधि रत्न जड़ लिया, उसे कुतर्क नहीं सता सकते, उसका चित्त कभी भी चंचल नहीं हो सकता। [31] बुद्धविजयकाव्य के अनुसार कामभागों के नष्ट होने पर शीलवान् साधक का चित्त लोक के विक्षोभों से रहित होकर समाधि की ओर झुकने लगता है। समाधि को प्राप्त व्यक्ति के चित्त में जो क्षोभ उत्पन्न करने वाले वितर्क, विचार, प्रीति तथा सुख होते हैं इन सब के क्रम से शान्त हो जाने पर वैराग्य एवं उपेक्षा भाव से युक्त निर्मल चित्त बन्धनों से मुक्त हो जाता है। [32]

सद्धर्मपुण्डरीक सूत्र में स्वयं धर्म संशय में पड़े हुए महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय ने उसी क्षण उन चार परिषदों के मन में उठने वाले विचारों का अपने चित्त में उठने वाले विचारों के द्वारा अनुमान करके कुमारभूत मञ्जुश्री से कहा कि हे मञ्जुश्री! मैं कुछ ऐसे धैर्यशाली बोधिसत्त्वों को देख रहा हूं जो पर्वत की गुफाओं में जाकर निवास करते है, वे बुद्धज्ञान के विषय में मनन करते हुए उसका स्वयं साक्षात्कार करते हैं। [33] भगवान् कहते है कि जो ध्यायी तथा महाध्यायी ध्यान समाधि में आनन्द लेने वाला तथा समाधिस्थ रहने वाला है, उसे पूरे आठ सहस्र कल्पों तक ध्यान समाधि में स्थित रहना चाहिए। [34]

समाधि में ऐसे अट्ठाईस गुण हैं, जिनके कारण सभी तथागत इनका सेवन करते है, इन्हें गुणों के कारण अपनी रक्षा होती है, दीर्घ जीवन होता है, बल बढ़ता है, सभी गुणों का नाश होता है, सभी अपयश दूर होते हैं, यश की वृद्धि होती है, भय हर जाता है, आलस्य चला जाता है, उत्साह बढ़ता है, राग, द्वेष, मोह नष्ट हो जाते हैं, झूठा अभिमान चला जाता है, चित्त की एकाग्रता होती है, मन बहुत हल्का हो जाता है, नम्रता आती है, प्रीति पैदा होती है, हर्ष होता है पुनर्जन्म से छुटकारा हो जाता है और भ्रमण भाव के यथार्थ–फल प्राप्त होते हैं। [35]

सद्धर्मपुण्डरीक सूत्र में स्तूपसंदर्शन नामक परिवर्त में अपने–अपने आसनों पर बैठे हुए तथागत अपने–अपने अनुचरों को भगवान शाक्यमुनि के निकट भेजते हुए रत्नपुष्प के पुटों को देकर इस प्रकार बोले–इस रत्नराशि की उन पर वर्षा करना और उनसे ऐसा कहना कि क्या भगवन! इस महान् रत्न स्तूप के उद्घाटन करने की कृपा करेंगे? तदनंतर, भगवान् ने आकाश स्थित उस महान् रत्न स्तूप को हाथ की दाहिनी उँगली द्वारा बीच से उद्घाटित कर दिया और उद्घाटित करके उसे दो भागों में बांट दिया। जिस प्रकार नगर के महान् द्वार में लगे हुए दो पटों (पल्लों) अर्गला (सिकड़ी) खोलकर अलग कर दिया जाता है, उसी प्रकार भगवान् ने आकाश स्थित उस महान रत्न स्तूप को दाहिनी उँगली द्वारा उद्घाटित करके खोला उस महान रत्न स्तूप के खुलते ही पर्यकासन की मुद्रा में बैठे हुए दुर्बलेन्द्रिय एवं क्षीणकार्य तथागत, अर्हत, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् प्रभूतरत्न समाधिस्थ की मुद्रा में दिखाई पड़े। [36] सुखविहारपरिवर्त में भगवान् मञ्जुश्री को समझाते हुए कहते है कि बोधिसत्व एकाग्रचित्त होकर समाधिस्थ एवं सुमेरू पर्वत की तरह दृढ़ होकर इसी अवस्था में सभी धर्मों को देखे तथा इन्हें आकाश के तुल्य (शून्य एवं आसितत्वहीन) समझे। [37] समाधिस्थ चित्त ही वस्तु के यथार्थ भाव को जानने में समर्थ होता है। जिस साधक का चित्त आसक्ति मुक्त तथा विक्षेप रहित हो गया है, वही साधक आलम्बन में स्थित होकर समाधि की अवस्था को प्राप्त करता है। [38] वह बोधिसत्त्व अपने आपको गिरिकन्दराओं में धर्मों का चिन्तन करते हुए देखता है तथा धर्म का ही चिन्तन करते हुए वह ध्याता का स्पर्श करता है। तदनन्तर, समाधि को प्राप्त करके वह सुगत के दर्शन करता है। [39]

सद्धर्मपुण्डरीक सूत्र में भगवान्, तथागत, अर्हत्, सम्यक् सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि ने अपनी भौंहों से जो प्रकाश रश्मि बिखेरी थी,

वह उस समय वैरोचन रश्मि–प्रतिमण्डित लोकधातु को महती आभा से प्रकाशित कर रही थी। उस लोकधातु में कुशल मूल की स्थापना करने वाला गद्गद्स्वर नामक महासत्त्व बोधिसत्त्व रहता था। गद्गदस्वर नामक उस बोधिसत्त्व ने अनेक समाधियाँ प्राप्त की थीं, जैसे उसने ध्वाजग्रकेयूरसमाधि, सद्धर्मपुण्डरीकसमाधि, विमलदत्तसमाधि प्राप्त की थी तथा नक्षत्रराजविक्रीडितसमाधि, अनिलम्भसमाधि, ज्ञानमुद्रसमाधि, अनिलम्भसमाधि–समाधि, सर्वरूतकौशल्यसमाधि, सर्वपुण्यसमुच्चयसमाधि, प्रसादवती समाधि, ऋद्धिविक्रिडीतसमाधि, ज्ञानोल्कासमाधि, व्यूहराज समाधि, विमलप्रभास समाधि, विमलगर्भसमाधि, अप्कृत्स्नसमाधि, सूर्यवर्त्तसमाधि प्राप्त की थी। इस प्रकार गद्गदस्वर ने गंगा नदी की बालूका के समान कोटिन्यूत शतसहस्र समाधियां प्राप्त की थी। [40]

तत्पश्चात्, महासत्त्व बोधिसत्त्व पद्मश्री भगवान् से बोले–हे भगवान्! यह कौन सी समाधि है। जिस समाधि में अवस्थित होकर महासत्त्व बोधिसत्त्व गद्गदस्वर ने प्राणियों को विनीत किया। ऐसे कहने पर तथागत, अर्हत, सम्बुद्ध, भगवान् शाक्यमुनि महासत्त्व बोधिसत्त्व पद्मश्री से यह बोले कि हे कुलपुत्र! यह सर्वरूपसन्दर्शन (नामक) समाधि है। इस समाधि में अवस्थित होकर महासत्त्व वे गद्गदस्वर ने इस प्रकार इतने अप्रमेय प्राणियों का हित किया है। [41] महासत्त्व बोधिसत्त्व पद्मश्री को भी सद्धर्मपुण्डरीक नामक समाधि प्राप्त हुई है। [42]

प्रज्ञा

शील और समाधि का फल प्रज्ञा का उदय है। भवचक्र के मूल में 'अविद्या' विद्यमान है। जब तक प्रज्ञा का उदय नहीं होता, तब तक अविद्या का नाश नहीं हो सकता। साधक का प्रधान लक्ष्य इसी प्रज्ञा की उपलब्धि में होता है। [43] प्रज्ञा इन्द्रिय धर्मालोकमुख है, इसके कारण चित्त की विमुक्ति होती है तथा ज्ञान का मनन हो पाता है। [44] कुशल चित्त से युक्त विपश्यना ज्ञान ही प्रज्ञा है। [45] वसुवन्धु इसे संग्रह स्वभाव वाली बुद्धि विशेष मानते है। [46] 'मिलिन्दपञ्ह' में कहा गया है कि 'काटना' प्रज्ञा की पहचान है और दिखा देना भी एक दूसरी पहचान है। प्रज्ञा उत्पन्न होने से अविद्या रूपी अंधेरा दूर हो जाता है और विद्यारूपी प्रकाश पैदा होता है, जिससे चारों आर्यसत्य साफ–साफ दिखायी देते हैं। तब, योगी अनित्य दुःख और अनात्म को भली–भान्ति ज्ञान से जान लेता है। [47] जिस प्रकार सूर्य और चन्द्रमा सभी द्वीपों को प्रकाशित करते हैं उसी प्रकार प्रज्ञा पारमिताओं को प्रकाशित करती है। जो साधक ज्ञान और आचरण दोनों से समन्वित है। वही देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ है। आचरण के द्वारा ही प्रज्ञा की शोभा बढ़ती है। प्रज्ञा की भावना से वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप का बोध होता है। जिस प्रकार अन्धकार पूर्ण गृह में प्रकाश होने से अन्धकार विलुप्त हो जाता है उसी प्रकार जन–मानस में प्रज्ञा के उदय से अविद्या रूपी अन्धकार विलुप्त हो जाता है तथा वहां पर ज्ञान का प्रकाश फैल जाता है। [48] प्रज्ञा को भ्रम रूपी अन्धकार में दीपक तथा व्याधियों की परम औषधि और जन्म–जरा रूपी समुद्र में नौका एवं दोष रूपी वृक्ष को शस्त्र कहा जाता है। [49]

सद्धर्मपुण्डरीक में भगवान् काश्यप से कहते है कि हे काश्यप! यह जात्यन्ध छह गतियों में विद्यमान, सांसारिक प्राणियों का प्रतीक है, जो सधर्म को नहीं जानते एवं अविद्या के कारण अन्धे बने क्लेश रूपी घने अन्धकार को बढ़ाते है, वे अविद्या से अन्धे होकर विविध संस्कारों की रचना करके संस्कारजन्य नामरूपों के चक्कर में पड़ जाते है। वे अज्ञान से अन्धे होकर इस संसार में फंसे रहते हैं, किन्तु त्रैधातुक संसार से मुक्त तथागत के हृदय में इनके प्रति इसी प्रकार करूणा रहती है जिस प्रकार पिता के हृदय में अपने पुत्र के प्रति करूणा रहती है। तथागत संसारचक्र में भ्रमण करते हुए प्राणियों को देखते है, जो इस संसार से निकलना नहीं जानते और देखकर समझ जाते है कि ये जीव पूर्वजन्मकृत सुकर्मों के कारण मन्दद्वेष एवं तीव्र राग अथवा मन्द राग एवं तीव्रदेष हो गये हैं, उनमें कुछ अल्पज्ञ हैं, कुछ पण्डित हैं, कुछ परिपक्व विचार वाले हैं एंव कुछ मिथ्या दृष्टि वाले है। भगवान् उन्हें प्रज्ञा की दृष्टि से देखते हैं। [50] प्रज्ञा के अनुष्ठान से ही ज्ञान दर्शन, मनोमय शरीर का निर्माण, ऋद्धियां, दिव्य श्रोत, दूसरों के चित्त का ज्ञान, दिव्यचक्षु, पूर्वजन्मों का स्मरण, दुःख–क्षय का ज्ञान प्राप्त होता है। [51] सद्धर्मपुण्डरीक में बुद्ध के कुछ ऐसे पुत्र भी हैं जो निरीह होकर आकाश स्थित पक्षियों की भान्ति निर्लिप्त भाव से संसार के द्वन्द्वमय धर्मों का आचरण कर रहे हैं। इन्होंने प्रज्ञा के द्वारा अग्रबोधि की प्राप्ति की है। [52] मिलिन्दपञ्ह में राजा 'मिलिन्द' 'नागसेन' से प्रश्न करते हैं कि हे ''भन्ते! क्या ज्ञान और प्रज्ञा एक ही चीज है?'' 'नागसेन' सुन्दर उपमा देते हुए समझाते ळैं–''महाराज ज्ञान और प्रज्ञा दोनों एक ही चीज है।'' [53] जैसे किसी अन्धेरी कोठरी में दीपक जला दे, उसके जलते ही अन्धेरा चला जाए और उजाला हो गाए। महाराज! उसी तरह ज्ञान के उत्पन्न होते ही मोह चला जाता है। प्रज्ञा भी अपना काम करके निरूद्ध हो जाती है। उस प्रज्ञा से सभी अनित्य है, सभी अनात्म है'' यह चिन्तन करके उत्पन्न होता है, वह वहीं रह जाता है। [54]

सद्धर्मपुण्डरीक में महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय ने उस समय भगवान् से इन गाथाओं के द्वारा वर्णन किया कि आप शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु में उत्पन्न हुए थे तथा वहां से निष्क्रमण करके गया नामक में जाकर तुमने बोधि प्राप्ति की थी। हे लोकनाथ! इस घटनाओं को हुए अभी बहुत कम समय व्यतीत हुआ है। [55] हे अवलोकितेश्वर! आप शुभ नेत्रोंवाले, मित्रतापूर्ण नेत्रोंवाले, प्रज्ञा एवं ज्ञान से विशिष्ट नेत्रों वाले, कृपापूर्ण नेत्रोंवाले, शुद्ध नेत्रोंवाले, प्रेमपूर्ण एवं सुन्दर मुखवाले तथा सुन्दर नेत्रोंवाले हैं। [56] इस समय तुम्हारे सम्मुख बोधिसत्वों का विशाल गण वर्तमान है जो अनेक कल्पों तक अपने कर्तव्यों का पालन करने वाला, श्रेष्ठ एवं कुशल ऋषि–बल में निष्कम्प भाव से स्थित रहने वाला, सुशिक्षित एवं प्रज्ञाबल में पारंगत है। [57]

तदन्तर भगवान् गाथाओं को कहकर महासत्त्व बोधिसत्त्व मैत्रेय से बोले–हे अजित! ये सभी अप्रमेय एवं अचिन्तय बोधिसत्व जिनकी गणना नहीं की जा सकती, प्रज्ञा एवं ज्ञान से सम्पन्न है एवं इन्होंने अनेक कोटिकल्पों तक ज्ञान का आचरण किया है। [58] ये सभी बोधिसत्त्व स्मृतिवान् है, प्रयत्नशील हैं एवं अप्रमेय प्रज्ञाबल में स्थित है। हे अजित! ये सभी मेरे तेजस्वी पुत्र है, ये सभी चतुर है तथा धर्म की चर्चा करते रहते हैं। [59] ये सभी धृतिमान्, प्रज्ञायुक्त, विलक्षण, प्रासादिक, दर्शनीय, धर्मसम्बन्धी चर्या करने में विशारद एवं लोकविनायकों द्वारा परिसंस्कृत किये गये हैं। [60] कुछ विशारद बोधिसत्व ऐसे भी है जो स्मृतिवान्, प्रज्ञासम्पन्न है तथा जिन्होंने अनेक सहस्र कल्पों में भी वर्तमान रहकर शिक्षा को ग्रहण किया है। [61] ये सभी बोधिसत्त्व महती प्रज्ञा से सम्पन्न है तथा गौरवपूर्ण ढंग से वर्तमान है। [62]

अन्त में वस्तुतः प्रज्ञा, शील और समाधि ये तीन बौद्ध धर्म में मुख्य साधन माने गये है। भगवान् बुद्ध इन तीन स्कन्धों की प्रशंसा करते थे और प्राणियों को सिखाते, पढ़ाते तथा प्रतिष्ठित करते थे कि यही दुःख मुक्ति का मार्ग है। यही सुख–शान्ति का सुपथ हैं। यही निर्वाण का द्वार हैं, जो इस मार्ग पर चलेगे वही निर्वाण को प्राप्त करेंगे, यही बुद्ध का धम्म हैं।

सन्दर्भ

1. बौद्ध–दर्शन–मींमासा पृ०,12
2. बौद्ध संस्कृत काव्य–समीक्षा, पृ०, 58
3. अभिधर्मदेशनाः बौद्ध सिद्धान्तों का विवेचन, पृ०, 33
4. भारतीय दर्शन, पृ०, 122
5. अरिय सीलं अनुबुद्धं पटिविद्धं अरियो समाधि अनुबुद्धो पटिविद्धो। अरिया पञ्ञा अनुबुद्धा पटिविद्धा। उच्छिना भवतण्हा, खीणा भवनेत्ति नत्थि दानि पुनब्भवोति। महापरिनिब्बानसुत्तं, पृ०, 108
6. संयुक्त निकायपालि, जटासुतं–प्रथम–भाग, पृ०, 25

7. सौन्दरनन्द महाकाव्य, सर्ग–16, श्लोक संख्या–36
8. सीलयतीति सीलं कायवची कम्मानि समादहति सम्मा ठपेतीति अत्थो। अभिधम्मत्थसंगहो (विभावनी टीका) पृ०, 133
9. विशुद्धिमग्गो, सीलनिद्देयो, प्रथम–भाग, पृ०, 32–33
10. मिलिन्दपञ्हपालि, पृ०, 26
11. पतिट्ठानलक्खणं, महाराज, सीलं सस्बेसं कुसलानं धम्मानं मिलिन्दपह, पृ०, 25
12. मिलिन्द प्रश्न (हिन्दी), पृ०, 41
13. यो सिलवा पञ्ञवा भाविततो, समाहितो झानरतो सतीमा। सब्बस सोका विगता पहीना खीणासवो अनितमदेहदारी।। संयुक्तनिकाय, 1, गाथा संख्या–53.
14. विशुद्धिमग्गो, सीलनिद्देसो, पृ०, 3
15. संयुक्तनिकायपालि, प्रथम भाग–जटासुत, पृ०, 25
16. शीले स्थितांस् तान्विज्ञाय रागहर्तव्यचेतसः।। बृद्धविजयकाव्यम्, सर्ग–51, श्लोक संख्या–30
17. भारतीय दर्शन, पृ०, 164; आर्यविनयवतार, पृ० 40
18. यद ब्रह्मचर्यं परं विशुद्धं निषेवितं शासनि नायकस्य।
तस्यो वशिष्टम् फलमद्य लब्धं शान्तं उदारं च अनास्रवं च।।
सद्धर्मपुण्डरीक, अधिमुक्तिपरिवर्त, श्लोक सं०–52, पृ०, 126
19. ये चात्र रक्षति सदा विशुद्धं शीलं अखंडमणिरत्नसादृश्यम परिपूर्णचारी च भवन्ति तत्र शीलने ते प्रस्थित अग्रबोधिम्।।
सद्धर्मपुण्डरीक, निदानपरिवर्त , श्लोक संख्या–32, पृ०, 12
20. बुद्धचरित, 23, श्लोक संख्या, 11
21. क्षान्तिबला कोचि जिनस्य पुत्रा अधिमानप्राप्तान क्षमन्ति भिक्षुणाम्।
आक्रोशपरिभाषा तथैव तर्जना क्षान्त्या हि ते प्रस्थित अग्रबोधिम।। सद्धर्मपुण्डरीक, निदानपरिवर्त, श्लोक संख्या–33
22. बुद्धचरित, 23, श्लोक संख्या–26
23. बुद्धविजयकाव्यम्, सर्ग–47, श्लोक संख्या–30
24. सद्धर्मपुण्डरीक, अधिमुक्तिपरिर्वत, श्लोक सं०–51, पृ० 126
25. कुशलचितस्य एकग्गता समाधि। विशुद्धिमग्गो, प्रथम–भाग, पृ०, 188
26. अभेदेन कुशलचित्तैकाग्रता ध्यानं समाधिस्वभावात्। अभिधर्मकोशभाष्य, पृ० 432
27. भारतीय दर्शन का इतिहास, पृ०, 121
28. भारतीय दर्शन, पृ०, 125
29. समाधीन्द्रियं धर्मालोकमुखं चित्तविमुक्त्यै संवर्तते। ललितविस्तरे, पृ०, 24
30. मिलिन्दपञ्हपालि, मिलिन्दपञ्हे, महावग्गो, पृ०, 29
31. अनुमानपञ्हे, अनुमानवग्गो, पृ०, 239
32. बुद्धविजयकाव्यम, सर्ग–51, श्लोक संख्या–46
33. काशिचच्च पश्याम्हु बोधिसत्त्वान् गिरिकन्दरेषु प्रविशन्ति धीराः।
विभावयन्तो इमु बुद्धज्ञानं परिचिन्तयन्तो ह्युपलक्षयन्ति।
सद्धर्मपुण्डरीक, निदानपरिवर्त, श्लोक संख्या–23, पृ०, 12
34. वही, पुण्यपर्यायपरिवर्त, श्लोक संख्या–27, पृ०, 340
35. मिलिन्दपञ्हपालि, हिन्दी रूपान्तर, मेण्डकप्रश्न, ऋद्धिबलवर्ग, पृ०, 121
36. सद्धर्मपुण्डरीक, स्तूपसंदर्शपरिवर्त, पृ०, 240–241
37. एकाग्रचित्तों हि समाहितो सदा सुमेरूकूटो यथ सुस्थितश्च।
एवं स्थितश्चापि हि तान् निरिक्षेदाकाशभतानिम् सर्वधर्मान।।
सद्धर्मपुण्डरीक, सुखविहारपरिवर्त, श्लोक संख्या–21, पृ०, 285
38. बुद्धविजयकाव्यम्, सर्ग–11, श्लोक संख्या–3
39. सद्धर्मपुण्डरीक, सुखविहारपरिवर्त, श्लोक संख्या–67, पृ०, 297
40. सद्धर्मपुण्डरीक, गद्गदस्वरपरिवर्त, पृ०, 431
41. वही, पृ०, 441
42. वही, पृ०, 442
43. बौद्ध–दर्शन–मीमांसा, पृ० 59
44. प्रज्ञेन्द्रियं धर्मालोकमुखं प्रत्यवेक्षणज्ञानतायै संवर्तते। ललितविस्तरे, पृ०, 24
45. कुशलचित्तसम्प्रयुक्तं विपस्सनाञाणं पञ्ञा। विशुद्धिमग्गो, खन्धनिद्देसो, पञ्चाकथा, पृ०, 367
46. घी प्रज्ञा धम सङ्ग्रहा थुप लक्षण स्वभावा। अभिधर्मकोश, 2, 24
47. मिलिन्दपञ्हपालि, मिलिन्दपञ्हे, महावग्गो, पृ०, 30
48. बौद्ध संघ का स्वरूप एवं विकास, पृ०, 133
49. प्रज्ञा दीपो भ्रमध्वान्ते व्याधीनामौषर्थ परम।
प्लवो जन्मजरासिन्धौ शस्त्रं दोषतरोः स्मृतम्।। बुद्धचरित, 26, श्लोक संख्या–70
50. सद्धर्मपुण्डरीक, ओषधिपरिवर्त, पृ०, 143–144
51. दीघनिकाय, सामञ्ञफलसुत्त, पृ० 30
52. सद्धर्मपुण्डरीक, निदानपरिवर्त, श्लोक संख्या–42, पृ०, 13
53. ''किं भन्ते यञ्ञेव ञाणं सा येव पञ्ञा'' ति। ''आम्, महाराज, यव यञ्ञेण ञाणं सा येव पञ्ञा'' ति। मिलिन्दपञ्हपालि, मिलिन्दपञ्हे, अद्धानवग्गो, पृ०, 32
54. मिलिन्दपञ्हपालि, हिन्दी रूपान्तर, अनुमानप्रश्न, अनुमानवर्ग, पृ०, 279
55. सद्धर्मपुण्डरीक, बोधिसत्त्वपृथ्वीविवरसमुदम्परिवर्त, श्लोक सं०–44, पृ०, 316
56. शुभलोचन मैत्रलोचना प्रज्ञाज्ञानविशिष्टलोचना।
कृपलोचन शुद्धलोचना प्रेमणीय सुमुखा सुलोचना।।
सद्धर्मपुण्डरीक, समन्तमुखपरिवर्त, पृ०, 453
57. सद्धर्मपुण्डरीक, बोधिसत्त्वपृथ्वीविवरसमुदगम्परिवर्त, श्लोक संख्या–45, पृ०, 316
58. वही, श्लोक संख्या–37, पृ० 313
59. आरब्धवीर्या स्मृतिमन्तं सर्वेप्रज्ञाबलस्मिन स्थित अप्रेमय।
विशारदा धर्मु कथयन्ति चैते प्रभास्वरा पुत्र ममेति सर्वे। वही, श्लोक संख्या–41, पृ०, 313
60. सद्धर्मपुण्डरीक, बोधिसत्त्वपृथ्वीविवरसमुदगम्परिवर्त, श्लोक सं०–51, पृ०, 317
61. एवमेव भगवांश्च नवो वयस्थः इमे च विज्ञा बहुबोधिसत्वाः।
स्मृतिमन्त प्रज्ञा विशारदाश्च सुशिक्षिता कल्पसहसकोटिषु।।
वही, श्लोक संख्या–50
62. बोधिसत्त्वा महाप्रज्ञाः स्थिताः सर्वे सगौरवाः। श्लोक संख्या–19, पृ०, 308